इकाई 15 नयी भू-व्यवस्थाएँ

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम 1857 तक भारत के विभिन्न भागों में अंग्रेजों द्वारा किये गये भू-राजस्व बंदोबस्तों का अध्ययन करेंगे?

इस इकाई को पढ़ने बाद आप :

- "राजस्व बंदोबस्त" का अर्थ बता सकेंगे,
- विभिन्न "बंदोबस्तों" को लागू करने के पीछे अंग्रेजों के निहित उद्देश्यों का वर्णन कर सकेंगे,
- बंदोबस्त के तीन प्रमुख प्रकारों की महत्वपूर्ण विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेंगे, और
- इनमें से प्रत्येक महत्वपूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था और देहातों में विभिन्न वर्गों में संबंध पर पड़ने वाले प्रभावों को रेखांकित कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

कई शताब्दियों से कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख अंग रहा है। अत: स्वाभाविक तौर पर राजा और शासक अपने करों का अधिकांश भाग कृषि से ही प्राप्त करते थे। ब्रिटिश सरकार ने भारत के कई हिस्सों पर अधिकार जमाया और कृषि पर भारी कर लगाए। इन करों के निर्धारण और वसूली के लिए उन्होंने कई प्रकार के भू-राजस्व बंदोबस्त कायम किए।

आइए, हम यह समझने की कोशिश करें कि इसका अर्थ क्या है? मान लीजिए ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने कुछ भारतीय राजाओं को पराजित कर उनके राज्यों को हस्तगत कर लिया होता। अब वे इस भूमि से कर वसूलने का प्रयत्न करते। आप यह भी सोच सकते हैं कि यह कार्य लूट-खसोट के जरिए भी किया जा सकता था और वस्तुत: किसी राज्य के

हस्तगत करने क्रम में ऐसा किया भी गया। पर इसे लंबे समय तक जारी नहीं रखा जा सकता था, पहली बात यह कि इस प्रकार के लूट में लुटेरा लूट का माल अपने पास रख लेता है और सरकारी खजाने को इसका लाभ नहीं मिल पाता है और दूसरे इस प्रकार की गतिविधि से लोग या तो वह स्थान छोड़कर भागने लगते हैं और वह स्थान बिल्कुल कंगाल हो जाता है और फिर उनसे कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः इसके लिए कराधार की नियमित व्यवस्था स्थापित करनी होती है।

इस प्रकार की व्यवस्था के लिए दो काम करने पड़ते हैं, पहले कर का निर्धारण किया जाता है और मूल्यांकन द्वारा यह निर्धारित किया जा सकता है कि कितनी राशि किस रूप में प्राप्त की जाएगी और उसके बाद यह तय किया जाता है कि इस कर की अदायगी कौन करेगा। इसके लिए ऐसे व्यक्ति का चुनाव किया जाता है, जिसका भूमि पर नियंत्रण हो और वह इससे जुड़ा हो, अन्यथा वह कुछ अदा करने में असमर्थ होगा। अतः जब सरकार कर अदायगी का भार किसी व्यक्ति पर सौंपती है, तो वह यह निश्चित कर लेती है कि इस व्यक्ति का भूमि पर किसी न किसी प्रकार अधिकार है, वह इससे आय अर्जित करता है, जिसमें से वह कर की अदायगी कर सकता है। अगर वह भूमि से कुछ आप नहीं प्राप्त कर सकेगा तो वह स्पष्टतः सरकार को भी कुछ नहीं दे पाएगा। सरकार जब यह तय कर लेती है कि कैसे भू-कर (या भू-राजस्व) का निर्धारण किया जाएगा और कौन इसकी अदायगी करेगा और कर के रूप में किस चीज का भुगतान होगा, तब भू-राजस्व बंदोबस्त का महत्वपूर्ण काम समाप्त हो जाता है। इस इकाई में हमने भारत में ब्रिटिशों द्वारा स्थापित विभिन्न भू-राजस्व के बंदोबस्त, उनकी विशेषताओं और भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज पर पड़ने वाले उनके प्रभावों की चर्चा की है।

15.2 भू-राजस्व प्रबंधन के आरंभिक प्रयोग

1757 में बंगाल पर अधिकार जमाने के बाद अंग्रेजों ने बंगाल के नवाबों द्वारा स्थापित प्रशासन को बरकरार रखा, बस इसका उपयोग उन्होंने अपने लिए अधिक से अधिक धन उगाहने के लिए किया। पर कंपनी के कर्मचारियों की लोलुपता और भ्रष्टाचार और प्रशासन में उनके लगातार हस्तक्षेप के कारण मामला बिल्कुल अव्यवस्थित हो गया और यह 1769-70 के अकाल का एक महत्वपूर्ण कारण बना। इसमें बंगाल की एक तिहाई जनता अकाल का ग्रास बन गयी।

अतः 1772 से "खेती व्यवस्था" (फार्मिंग सिस्टम) के नाम से एक नयी व्यवस्था लागू की गयी। इस व्यवस्था के तहत सरकार ठेके पर भू-राजस्व का जिम्मा किसी व्यक्ति को सौंप देती थी। जो ठेकेदार सबसे ज्यादा बोली लगाता था, उसे एक जिले या प्रखंड से कुछ समय के लिए राजस्व वसूलने का अधिकार दे दिया जाता था। निश्चित रूप से ये ठेकेदार (उन दिनों इन्हें "किसान" कहा जाता था) अपने ठेके की अवधि में अधिक से अधिक लगान वसूलने की कोशिश करते थे इस बात से उन्हें कोई सरोकार नहीं था कि लोग इससे कंगाल हो जाएंगे और अगले साल इसका असर उत्पादन पर पड़ेगा। उन्हें केवल मुनाफा कमाने से मतलब था। इस व्यवस्था के कारण शोषण और अत्याचार बढ़ा। बाद में कुछ ठेकेदारों ने यह महसूस किया कि उन्होंने बोली ज्यादा बढ़ाकर लगा दी है और इस शोषण और अत्याचार के बावजूद वे इतनी बड़ी रकम नहीं जुटा सकते हैं। अंततः इस व्यवस्था की परिणति भी भ्रष्टाचार में हुई। जैसा कि आज भी सरकारी ठेकों में होता है, सरकारी कर्मचारी अपने दोस्तों और चहेतों को आसान दर पर ठेका दिलवा दिया करते थे और कर्मचारी अपने नाम से "बेनामी" ठेका ले लेते थे, इससे सरकार को घाटा होता था। 1768 में लार्ड कार्नवालिस को प्रशासन को भ्रष्टाचार से मुक्त करने और पुनर्संगठित करने के लिए भारत भेजा गया।

15.3 बंगाल में स्थाई बंदोस्त

कार्नवालिस ने भारत आकर महसूस किया कि वर्तमान व्यवस्था देश को दरिद्र बना रही थी और यहाँ कृषि पतनोन्मुख थी इसके अलावा इसका उत्पादन इतना कम था कि यह कंपनी की

जरूरतों को पूरा नहीं कर सकती थी। कंपनी कृषि से बृहद् और नियमित आय की आशा करती थी। कार्नवालिस ने यह भी महसूस किया कि कंपनी भारत से जिन वस्तुओं को यूरोप में बाजारों में बेचने के लिए ले जाना चाहती थी, उनके उत्पादन में भी कमी आयी, मसलन रेशम, सूत आदि, क्योंकि ये भी कृषि पर ही आधारित थे। जब कृषि पतनोन्मुख हो, तो हस्तशिल्प उद्योग कभी भी पनप नहीं सकता। लंदन में बैठे अधिकारियों और कार्नवालिस ने यह महसूस किया कि कराधान की अनियमितता और अव्यवस्था के कारण ही भ्रष्टाचार भी है और शोषण भी।

अत: अब भू-कर को स्थाई तौर पर निर्धारित करने का निर्णय लिया गया, सरकार ने आश्वासन दिया कि वह भविष्य में कभी कर नहीं बढ़ाएगी। इस आश्वासन से कई प्रकार के परिणामों की आशा की गयी। यह भ्रष्टाचार को कम करेगा और पदाधिकारियों द्वारा मनमाने ढंग से करारोपण पर रोक लगाएगा। इसके अलावा उत्पादन में वृद्धि के बावजूद राज्य अतिरिक्त मांग नहीं करेगा, इससे भूमि पर भूमि की उपज बढ़ाने के लिए धन निवेशित करेंगे, क्योंकि मुनाफे का पूरा हिस्सा उनका होगा। इससे उत्पादन और व्यापार में वृद्धि होगी और सरकार को भी नियमित रूप से कर मिलता रहेगा। अंततः कार्नवालिस का यह मानना था कि भूमि कर स्थाई हाने के बावजूद, सरकार अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए व्यापार और वाणिज्य पर कभी भी कर बढ़ा सकती थी वस्तुतः भूमि कर का निर्धारण भी काफी अधिक दर पर किया गया था। भूमि कर की कुल रकम 2 करोड़ 65 लाख रुपये तय की गयी थी।

15.3.1 जमींदारों के साथ बंदोबस्त

इस प्रकार हमने देखा कि भू-राजस्व स्थाई तौर पर निर्धारित कर दिया गया। पर सवाल यह था कि यह किसके माध्यम से वसूला जाए? बंगाल के नवाब जमींदारों के मार्फत कर वसूला करते थे। इन जमींदारों के अधिकार में काफी बड़ा इलाका होता था, कभी-कभी पूरा जिला इनके नियंत्रण में होता था। उनके पास अपनी सेनाएँ होती थीं और उन्हें राजा कहा जाता था। पर कुछ ऐसे छोटे इलाके भी थे, जहाँ से लगान की वसूली सीधे या किसी बड़े जमींदार के माध्यम से की जाती थी। खेती का काम किसान करते थे और वे प्रत्येक उपमंडल (या परगना) में निर्धारित स्थाई प्रथमानुसार दर से कर का भुगतान जमींदार को करते थे। शोषक जमींदार नियमित भू-राजस्व दरों के अतिरिक्त भी कर लगा देते थे। इस प्रकार के कर को "अबवाब" कहा जाता था।

1790 तक ब्रिटिश शासन ने इस व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। कुछ जमींदारों का स्थान ठेकेदारों या पदाधिकारियों ने ले लिया। पुरानी प्रथागत दरों को नजरअंदाज किया गया और राजस्व बढ़ाने के लिए सभी तरह के गैर कानूनी कार्य किये गये। कार्नवालिस के आगमन के पूर्व पूर्णतः अव्यवस्था का माहौल था। नया गवर्नर जनरल ब्रिटेन के भूमिपति कुलीन वर्ग का सदस्य था। अत: वह जमींदारों को जमीन की मिल्कियत देने के पक्ष में था। उसके दिमाग में अंग्रेज भूमिपतियों का चित्र था, जिन्होंने खेतों को विकसित किया था। इसके अतिरिक्त राजस्व निर्धारण के लिए सरकार के पास अन्य किसी वर्ग के साथ बंदोबस्त करना कठिन था।

इस स्थिति को समझने के लिए आपका यह जानना जरूरी है कि उस समय बिहार, बंगाल और उड़ीसा को मिलाकर कुछ चालीस से पचास लाख किसान परिवार खेती में कार्यरत थे। उनसे सीधे तौर पर कर वसूली के लिए उनके खेतों का पूरा ब्यौरा तैयार करना पड़ता और उस आधार पर कर का निर्धारण करना पड़ता इसके लिए कई वर्ष लगाने पड़ते और काफी संख्या में कर्मचारियों की नियुक्ति करनी पड़ती। इससे भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिलता। स्पष्ट रूप से कुछ बड़े जमींदारों से राजस्व वसूलना ज्यादा सरल था और बिहार तथा बंगाल में यही व्यवस्था 1793 में स्थायी बंदोबस्त के तहत की गयी। सभी खेतिहर इलाके विभिन्न जमींदारियों में बंट गये। जमींदार को एक निर्धारित कर की अदायगी करनी होती थी, जब तक वह अपना कार्य कुशलता से संपन्न करता रहता था तब तक वह अपनी जमींदारी का मालिक होता था। वह इसे बेच सकता था, गिरवी रख सकता था या इसे हस्तांतरित कर सकता था। काल-क्रम से उसके वंशज जमींदारी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त करते थे। पर, अगर जमींदार निर्धारित कर अदा करने में असफल रहता था, तो सरकार उसकी जमींदारी को दखल कर लेती थी और उसे नीलाम कर देती थी। इस प्रकार सभी अधिकार नये मालिक को मिल जाते थे।

15.3.2 खेतिहरों की स्थिति

खेती का काम लाखों किसान किया करते थे, जो अब जमींदार के काश्तकार मात्र रह गये थे। कार्नवालिस ने यह निर्णय भी जारी किया था कि जमींदार किसानों से लिखित समझौता (पट्टा) करेंगे और इसमें किसानों द्वारा दिए जाने वाले राजस्व का हवाला होगा। उसका विश्वास था कि इससे किसानों पर होने वाले शोषण में कमी आएगी। व्यावहारिक तौर पर, वस्तुतः किसी किसान को पट्टा नहीं दिया गया और किसान पूर्वतः जमींदारों की दया पर आश्रित थे।

यह स्थिति आकस्मिक नहीं थी। जैसा कि हमने पहले भी जिक्र किया है कि स्थाई बंदोबस्त में कर-निर्धारण बहुत ज्यादा दर पर किया गया था। यह निर्धारण बहुत ज्यादा था और इससे शोषण को बढ़ावा मिला। एक जानकार पदाधिकारी जौन शोर के अनुसार यदि किसी भूमि से 100 रुपये का अनाज पैदा होता था, तो उसमें से 45 रुपए सरकार खजाने में और 15 रुपये जमींदार के पास चले जाते थे। किसान के पास मात्र 40 रुपये बचते थे। इस प्रकार की भारी रकम दमनात्मक तरीके से ही वसूली जा सकती थी। अगर जमींदारों को किसानों का शोषण करने का अधिकार न दिया जाता तो वे सरकार की माँग की पूर्ति नहीं कर पाते। 1793, 1799 और 1812 में बने नियमों के तहत किसानों द्वारा रकम भुगतान न किये जाने की स्थिति में जमींदार किसान की जमीन जब्त कर सकता था। ऐसा करने के लिए उसे किसी न्यायालय की शरण में जाने की जरूरत नहीं थी। यह दमन का एक वैध तरीका था। इसके अतिरिक्त जमींदार किसानों द्वारा भुगतान न किए जाने पर अनेक अवैध तरीके भी अपनाते थे, मसलन किसानों को ताले में बंद कर देना, उन्हें पीटना आदि। अतः स्थाई व्यवस्था का तात्कालिक प्रभाव किसानों की दयनीय स्थिति के रूप में सामने आया। उनकी स्थिति पहले से भी खराब हो गयी। दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार और जमींदारों को इस व्यवस्था से खूब फायदा हुआ।

15.3.3 स्थाई बंदोबस्त के प्रभाव

ऊपर से देखने में यह लगता है कि यह व्यवस्था जमींदारों के हक में काफी मजबूत थी। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अब उन्हें प्रत्येक वर्ष एक निश्चित तारीख तक एक निश्चित रकम सरकारी खजाने में जमा करवा देनी पड़ती थी और इसमें चूकने पर जमींदारी की नीलामी हो जाती थी। इसके अतिरिक्त कुछ जमींदारियों की दर इतनी ज्यादा निर्धारित कर दी गयी थी कि बाढ़, सूखे और अन्य विपत्ति के कारण उनके पास कुछ भी नहीं बच पाता था। अतः परिणामस्वरूप स्थाई बंदोबस्त के तुरंत बाद अनेक जमींदारों की जमींदारी छीन ली गयी और ये जमींदारियाँ कई दशकों तक बिकती रहीं। अकेले बंगाल में 1794 और 1819 के बीच जमींदारों भूमि का 68 प्रतिशत बेचा गया। व्यापारियों, सरकारी पदाधिकारियों और अन्य जमींदारों ने ये जमीनें खरीदी। नये खरीददारों ने मुनाफा कमाने के लिए किसानों से अधिक रकम वसूलनी शुरू की। राजा राममोहन राय ने टिप्पणी की है :

"1793 से स्थाई बंदोबस्त के तहत भूमिपतियों ने लगान बढ़ाने की हर संभव कोशिश की है और इसके लिए अपनी संपूर्ण शक्ति का उपयोग किया है।" इसके बावजूद कई जमींदार ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित रकम को अदा करने में दिक्कत महसूस करते थे। एक ऐसे ही जमींदार, बर्दवान के राजा ने अपनी जमींदारी को कई टुकड़ों में बाँट दिया था, इन्हें पटनी तालुक कहते थे। इन सभी इलाकों को एक पटनीदार के हवाले किया गया, जो एक नियत राशि देने का वचन देता था। अगर वह रकम अदा करने में असफल रहता था, तो उसकी पटनी जब्त कर बेच दी जाती थी। अन्य जमींदारों ने भी यह प्रथा अपनाई–इस प्रकार सामंती व्यवस्था के कई स्तर कायम होने की प्रक्रिया शुरू हुई।

धीरे-धीरे बंगाल की जनसंख्या में वृद्धि हुई। उपेक्षित जमीनों और जंगलों को भी खेतों में परिणत किया गया। दूसरी तरफ सरकार को दी जाने वाली रकम स्थिर थी। अतः जमींदारों की स्थिति में सुधार आया और अपने काश्तकारों के खर्चे पर वे शानो-शौकत की जिंदगी बसर करने लगे। 1859 में जाकर सरकार ने काश्तकारों के अधिकारों के संरक्षण का कुछ प्रयास किया। एक कानून पारित किया गया, जिससे पुराने काश्तकारों को सीमित संरक्षण प्राप्त हुआ। इन्हें दखल काश्तकार (Occupancy Tenants) कहा गया।

15.4 स्थाई बंदोबस्त से मोहभंग

बंगाल में स्थाई बंदोबस्त लागू करते समय कार्नवालिस ने यह सोचा था कि इसे अन्य ब्रिटिश क्षेत्रों में भी कार्यान्वित किया जाएगा। और मद्रास सरकार ने वस्तुत: अपने क्षेत्र में इसका कार्यान्वयन आरंभ कर दिया था। पर इसकी खामियाँ बहुत जल्द स्पष्ट हो गयीं और ब्रिटिश पदाधिकारी इस व्यवस्था की तर्कसंगतता पर संदेह करने लगे।

अंग्रेजों के संदर्भ में इस व्यवस्था की सबसे बड़ी खाई यह थी कि इसमें कर बढ़ाने का कोई प्रावधान नहीं था, जबकि निरंतर युद्धों में उलझे रहने के कारण कंपनी का खर्च दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। लार्ड वेलेस्ली 1798 से 1806 तक भारत का गवर्नर जनरल रहा। उसने वस्तुत: इंग्लैंड से आई व्यापारिक वस्तुओं की खरीद की राशि का युद्ध संबंधी खर्चे के लिए उपयोग किया। अत: पदाधिकारी सरकारी आय को बढ़ाने के तरीके के बारे में सोचने लगे। उनके अनुसार 1793 में जमींदारी आसान दरों पर दे दी गयी थी और यह गलती भविष्य में दुहराई नहीं जानी चाहिए। 1811 में लंदन सरकार ने बिना किसी अधिसूचना और भूमि के व्यापक सर्वेक्षण के बिना स्थाई बंदोबस्त को लागू करने के खिलाफ चेतावनी दी।

बोध प्रश्न 1

1) भू-राजस्व बंदोबस्त लागू करने के लिए अनिवार्य दो घटकों का उल्लेख कीजिए। उत्तर चार पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

2) बंगाल में स्थाई बंदोबस्त लागू करने के पीछे क्या मंशा थी? किसानों की स्थिति पर इसका क्या प्रभाव पड़ा? 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) खेती व्यवस्था पर लघु टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

15.5 वैकल्पिक व्यवस्थाओं का उदय

ब्रिटिश पदाधिकारियों ने भू-कर के निर्धारण और वसूली के अन्य तरीकों की खोज शुरू

कर दी। मुनरो और रीड नामक दो पदाधिकारियों को 1792 में मद्रास क्षेत्र के नये जीते गए इलाकों में प्रशासन संभालने के लिए भेजा गया। जमींदारों से लगान वसूलन के बजाय वे सीधे गाँवों से भू-राजस्व वसूलने लगे। उन्होंने प्रत्येक गाँव के लिए एक राशि निर्धारित कर दी। उन्होंने सभी किसानों या रैयतों का अलग-अलग ब्यौरा प्राप्त करना शुरू किया और इस प्रकार रैयतवारी व्यवस्था का जन्म हुआ। इस आरंभिक रैयतवारी व्यवस्था में खेतों का मूल्यांकन किया जाता था और प्रत्येक खेत की एक राशि निर्धारित की जाती थी। जो किसान इस खेत पर खेती करना चाहता था, उसे निर्धारित राशि अदा करनी पड़ती थी। निर्धारित राशि न अदा करने की स्थिति में वह उस भूमि पर खेती नहीं कर सकता था। अगर उस भूमि पर खेती करने के लिए कोई किसान आगे नहीं आता हो, वह भूमि परती रह जाती थी, उस पर कोई खेती नहीं होती थी।

15.5.1 रैयतवाड़ी के तहत कर निर्धारण

आपने देखा कि कर निर्धारण या राजस्व तय करना अधिकारियों के लिए एक मुश्किल कार्य था। उसे प्रत्येक जिले और परगने के हजारों खेतों पर राजस्व निर्धारण करना पड़ता था। उसे यह सावधानी रखनी पड़ती थी कि सभी खेतों पर एक समान कर निर्धारण हो। अगर किसी खेत पर कम और किसी खेत पर ज्यादा राजस्व लगाया जाता, तो किसान महँगे खेतों को छोड़ सस्ते खेतों पर ही खेती करते और महँगे खेत परती हो जाते। उन पर कोई खेती नहीं करता।

किसी खेत के कर निर्धारण के लिए राजस्व पदाधिकारी को दो बातें ध्यान में रखनी होती थीं, पहली बात यह कि मिट्टी की उर्वरता कितनी होती है। यह पथरीली जमीन है या उपजाऊ, सिचाई उपलब्ध है या नहीं आदि, दूसरे उसे यह भी ध्यान रखना पड़ता था कि खेत किस जगह स्थित है। इससे पता चलता है कि यह व्यवस्था सर्वेक्षण और वर्गीकरण पर आधारित थी। अतः सभी गाँवों में स्थित उर्वरक भूमि का राजस्व एक-सा था, इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि खेत इस गाँव में है या उस गाँव में है। पर यह राशि कैसे निर्धारित की गयी?

मुनरो अक्सर खेत में हुए उपज का आकलन करते हुए कर का निर्धारण करता था। मसलन एक एकड़ में 2600 मन धान होता है। उसने कुल उपज का एक तिहाई या 2-5 वाँ हिस्सा सरकार के खाते में डाल दिया और इसका मूल्य निर्धारित कर दिया। इतनी ही राशि एक किसान सरकार को देता था। यह रैयतवाड़ी का सैद्धांतिक पक्ष है। व्यवहार में राजस्व का आकलन अनुमान पर आधारित होता था और इतनी ज्यादा राशि माँगी जाती थी कि किसान बहुत मुश्किल से वह राशि अदा कर पाता था और कभी-कभी तो इस राशि की वसूली मुश्किल हो जाती थी।

15.5.2 मद्रास में रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू करना

भू-राजस्व संबंधी आरंभिक प्रयोगों के बाद मद्रास में 1820 तक रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू कर दी गयी और इस व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए मुनरो को मद्रास का गवर्नर नियुक्त किया गया। मुनरो ने इस व्यवस्था के पक्ष में कई तर्क दिए। उसने दावा किया कि यह मूलतः भारतीय भू-व्यवस्था है और भारतीय परिवेश के लिए उपयुक्त है। इसे लागू करने से अन्य व्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक कर की प्राप्ति हो सकती है। इसका कारण यह है कि राजस्व निर्धारण और वसूली में सरकार और किसान के बीच सीधा संबंध होगा। इसमें कोई जमींदार या बिचौलिया नहीं होगा अतः किसान से प्राप्त पूरी राशि सरकारी खजाने में चली जाएगी। मद्रास सरकार की वित्तीय स्थिति कमजोर थी और उसके लिए यह व्यवस्था अनुकूल साबित होगी। अतः स्थाई बंदोबस्त की खामियों का लाभ उठाते हुए उसने अस्थाई रैयतवाड़ी बंदोबस्त लागू किया।

15.5.3 रैयतवाड़ी : सिद्धांत और व्यवहार

हमने मुनरो द्वारा विकसित रैयतवाड़ी व्यवस्था की रूपरेखा पर विचार किया। मुनरो ने इस व्यवस्था को अपने नियंत्राधीन जिलों में लागू किया था। हालाँकि 1820 के बाद जो रैयतवाड़ी व्यवस्था मद्रास प्रेसिडेंसी के अधिकांश भागों में लागू की गयी, वह मुनरो की व्यवस्था से थोड़ा भिन्न थी। आपको याद होगा कि उसकी रैयतवाड़ी खेतों के मूल्यांकन पर आधारित थी और कोई भी किसान किसी भी खेत पर खेती करने के लिए स्वतंत्र था। और जैसा कि हमने देखा है इस व्यवस्था का कार्यान्वयन खेतों की माप और मूल्यांकन पर निर्भर

था। यह माप और मूल्यांकन सरकार किया करती थी। लेकिन 1820 के बाद यह व्यवस्था उन इलाकों में भी स्थापित की गई जहाँ कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया था। कोई यह नहीं जानता था कि एक किसान के पास कितनी जमीन है और उसमें क्या उपजाया जाता है। करों का निर्धारण मनमाने ढंग से, पहले से अदा किए जा रहे करों के आधार पर किया जाने लगा। इसे पूर्व उत्पादन पर आधारित (Put Out) मूल्यांकन कहा गया। इसमें भी सिद्धांततः रैयत को अपने चुनाव पर किसी खेत पर खेती करने की स्वतंत्रता दी गयी। लेकिन बहुत जल्द ही यह महसूस किया जाने लगा कि अगर यह स्वतंत्रता दी गयी, तो सरकार के राजस्व में कमी आ जाएगी। अतः सरकारी पदाधिकारी किसानों को उन खेतों पर काम करने के लिए दबाव डालने लगे, जिन पर वे काम नहीं करना चाहते थे, और उन्हें इसका राजस्व भी अदा करना पड़ता था। अब किसी खेत पर खेती करना किसानों की इच्छा पर निर्भर नहीं था, क्योंकि इससे राजस्व वसूल करने में असुविधा होती थी। अतः किसी किसान को खास खेती में काम करने के लिए मजबूर किया जाने लगा और राजस्व वसूली के लिए उन पर तरह-तरह के अत्याचार भी किए जाने लगे। इन अत्याचारों का 1854 में स्थापित मद्रास यातना आयोग ने पर्दाफाश किया। इसके बाद इस व्यवस्था में कुछ सुधार लाया गया। भूमि का वैज्ञानिक सर्वेक्षण किया गया। इससे कर का वास्तविक भार कम हुआ और राजस्व वसूली में अब किसी प्रकार के अत्याचार की जरूरत नहीं थी। हालाँकि यह बदलाव 1860 के बाद आया, जो अभी हमारे अध्ययन क्षेत्र से बाहर है।

15.5.4 मद्रास में रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रभाव

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यह व्यवस्था भी ग्रामीण अर्थव्यस्था के लिए हानिकारक थी। किसान गरीब हुए और अब ये नयी भूमि पर खेती नहीं कर सकते थे। 1855 में मद्रास सरकार ने यह पाया कि रैयतवाड़ी व्यवस्था के अंतर्गत केवल एक करोड़ पैंतालीस लाख एकड़ जमीन जोती गयी और एक करोड़ अस्सी लाख एकड़ जमीन परती रह गयी। उसने स्वीकार किया इस बात में कोई संदेह नहीं है कि खेती बढ़ने से सरकारी कर में कमी आएगी। ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। इसके साथ ही जमीन के दाम में भी काफी गिरावट आई। 19वीं शतब्दी की प्रथम अर्द्धशताब्दी में मद्रास में जमीन का मूल्य नगण्य था। कोई जमीन खरीदना नहीं चाहता था, क्योंकि जमीन खरीदने के बाद के मालिक को काफी ऊँचे दर पर कर देना पड़ता था और कर देने के बाद उसके पास कुछ शेष नहीं रह जाता था। इस स्थति में कोई जमीन खरीदना नहीं चाहता था।

15.5.5 बंबई में रैयतवाड़ी बंदोबस्त

बंबई प्रेसिडेंसी के अंतर्गत गुजरात में रैयतवाड़ी व्यवस्था की शुरुआत हुई। ब्रिटिश सरकार ने पहले वंशानुगत पदाधिकारियों (देयी) और मुखिया (पटेल) के जरिए राजस्व वसूलना शुरू किया। इस तरीके से उन्हें मनचाही रकम नहीं प्राप्त हो रही थी, अतः अंग्रेज 1813-14 से खुद सीधे किसानों से राजस्व वसूल करने लगे। अंग्रेजों ने 1818 में पेशवा राज्य को हस्तगत कर लिया। इसके बाद मुनरो के शिष्य एलफिस्टन के नेतृत्व में मद्रास में लागू रैयतवाड़ी व्यवस्था को यहाँ भी कार्यान्वित किया गया। मद्रास रैयतवाड़ी के दुर्गुण यहाँ भी जल्द ही प्रकट होने लगे। राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारियों के बीच अधिक से अधिक राजस्व बटोरने की होड़ मच गयी।

प्रिंगल नामक पदाधिकारी के निरीक्षण में भूमि का सर्वेक्षण और वर्गीकरण किया गया। यह सर्वेक्षण अंग्रेज अर्थशास्त्री रिकार्डो के "किराए के सिद्धांत" को आधार बनाकर किया जाना था। यह सिद्धांत भारतीय परिस्थिति से बिल्कुल मेल नहीं खाता था और मुनरो का अनुमान खामियों से भरा था, परिणामतः कर निर्धारण ने पूणे जिले में राजस्व वसूल करने की कोशिश की, तो अधिकांश किसानों ने अपनी जमीन छोड़ दी और हैदराबाद के निजाम के राज्य में चले गये। कुछ समय बाद इस कर निर्धारण को छोड़ दिया गया।

विंगेट और गोल्डस्मिड नामक दो पदाधिकारियों ने एक नयी व्यवस्था सामने रखी। उन्होंने अपनी व्यवस्था में किसी सिद्धांत का समावेश नहीं किया, बल्कि कर निर्धारण इस दर पर करने की कोशिश की, जिसे नियमित रूप से अदा किया जा सके। खेत की मिट्टी और स्थान के आधार पर खेत का मूल्यांकन निर्धारण किया जाना था। इस व्यवस्था की शुरुआत 1836 में हुई और 1865 तक यह संपूर्ण दक्कन में छा गई। कृषि पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और नये कर निर्धारण के साथ खेतिहर इलाकों में भी वृद्धि हुई।

15.5.6 मद्रास और बंबई में रैयतवाड़ी व्यवस्था के प्रभाव

हमने देखा कि किस प्रकार स्थाई बंदोबस्त में पूरे किसान वर्ग पर कुछ मुट्ठी भर जमींदारों का वर्चस्व स्थापित हो गया। रैयतवाड़ी व्यवस्था में सामाजिक प्रभाव का एक दूसरा रुख सामने आया। कई इलाकों में वास्तविक खेती करने वाले किसानों को दखलदार या रैयत का दर्जा दिया गया और उनका अपनी जमीन पर दखल कायम हुआ। जैसा कि हमने पहले देखा कि राजस्व की दर ऊँची होने के कारण बहुत से किसान खुशी-खुशी अपनी जमीन छोड़ देते, उन्हें ऐसा करने से रोकना था। इसमें यह भी संभव था कि वास्तव में खेती न करने वाले लोग किसी जमीन के दखलदार या मालिक बन जाएँ, और इस खेत पर उनके आसामी, नौकर यहाँ तक कि बंधुआ मजदूर खेती करें। ऐसी स्थिति खासकर तमिलनाडु के तंजौर जिले में थी जहाँ कई रैयतों के पास हजार-हजार एकड़ जमीन थी। रैयत जितनी जमीन चाहे अपने पास रख सकता था, जमीन रखने की कोई सीमा निर्धारित नहीं थी। अतः विभिन्न रैयतों की आर्थिक स्थिति और स्तर में काफी फर्क था। महाजन और अन्य गैर खेतिहर वर्ग जमीन हासिल करने के इच्छुक नहीं थे, क्योंकि राजस्व दर बहुत ऊँची थी। हालांकि राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारी किसानों को परेशान किया करते थे, पर किसानों को यह भय नहीं था कि महाजन या भूमिपति उसकी जमीन हड़प लेंगे। बंबई में 1836 के बाद और मद्रास में 1858 के बाद सुधरी हुई रैयतवाड़ी व्यवस्था में भू-राजस्व का भार कुछ हल्का हुआ और जमीन की खरीद फरोख्त शुरू हो गयी। अब खरीददार खेती से लाभ कमाने की सोच सकता था, क्योंकि अब राज्य सारा उत्पादन नहीं ले लेता था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि महाजन अपने ऋणी किसानों की जमीनें हड़पने लगे, उनसे जमीनें छीनने लगे या उन्हें किसान से मजदूर बना दिया। इस प्रक्रिया में सामाजिक दबाव बढ़ा और 1875 में बंबई दक्कन में बड़ा ग्रामीण विद्रोह हुआ।

15.6 अन्य वैकल्पि बंदोबस्त : महलवाड़ी व्यवस्था

1801 और 1806 के बीच लार्ड वेलेस्ली की विस्तारवादी नीति के कारण उत्तर भारत के अनेक हिस्से ब्रिटिश राज्य में मिला लिए गए। यह इलाका उत्तर पूर्वी प्रांत के रूप में जाना गया। आरंभ में अंग्रेजों ने बंगाल के नमूने पर यहाँ भी बंदोबस्त करने की योजना बनाई। वेलेस्ली ने अपने स्थानीय पदाधिकारियों को ऐसे जमींदारों की खोज करने के लिए कहा, जो काफी ऊँची दर पर राजस्व कर सकें। अगर कोई जमींदार न मिले तो गाँव-गाँव जाकर बंदोबस्त किया जा सकता था, और राजस्व अदायगी का काम मुकद्दम, प्रधान या गाँव के किसी प्रतिष्ठित रैयत को सौंपा जा सकता था। अंततः बंगाल की तरह स्थाई बंदोबस्त कायम करने की योजना थी।

इसके साथ-साथ राजस्व वसूली को बढ़ाने के हर संभव उपाय किए गए। 1803-04 में 188 लाख रुपए की माँग की गयी, यह माँग 1817-18 में बढ़कर 297 लाख रुपए हो गयी।

इस प्रकार की बढ़ोतरी का अधिकांश बड़े जमींदारों और राजाओं ने कड़ा विरोध किया। ये जमींदार और राजा पहले ही अपनी स्वतंत्रता लगभग खो चुके थे। अतः नये प्रशासन ने उनकी जमीनें छीन लीं। पुराने जमींदार अंग्रेजों द्वारा माँगी गयी रकम का भुगतान न कर सके और सरकार द्वारा उनकी संपदा बेच दी गयी। अतः अब सीधे गाँव के प्रधान और मुकद्दम के माध्यम से राजस्व वसूली अनिवार्य हो गयी। राजस्व संबंधी खातों में एक वित्तीय इकाई के लिए "महल" शब्द का उपयोग किया गया है, अतः गाँव आधारित कर निर्धारण को महलवारी बंदोबस्त के रूप में जाना जाने लगा। इस व्यवस्था में एक व्यक्ति कई गाँवों का जिम्मा ले सकता था, इस प्रकार बड़े जमींदारों का उदय होने लगा। बंगाल के समान राजस्व वसूली में यहाँ भी अव्यवस्था आई। आरंभिक वर्षों में सरकारी पदाधिकारी अवैध तरीके से जमीनें अपने पास रख लेते थे। इसी समय सरकार को यह महसूस हुआ कि राजस्व वसूली में आमदनी से अधिक खर्च हो रहा है। इसके बाद स्थाई बंदोबस्त को समाप्त कर दिया गया।

15.6.1 महलबाड़ी : सिद्धांत और व्यवहार

1819 में एक अंग्रेज पदाधिकारी हाल्ट मैकेंजे ने एक सिद्धांत सामने रखा कि ताल्लुकदार

और जमींदार मूलत: सरकार द्वारा नियुक्त थे और वे उस गाँव के या उस ग्रामीण समुदाय के मालिक थे, जहाँ वे रहते थे। उसने तर्क दिया कि सर्वेक्षण में उनके अधिकारों और भुगतान की राशि का उल्लेख होना चाहिए। उसके ये विचार 1822 के अधिनियम VII के रूप में संग्रहित हैं। इसके अनुसार यह जरूरी हो गया कि सरकारी पदाधिकारी जमींदारों, खेतिहरों आदि के अधिकारों का उल्लेख सर्वेक्षण में करें, साथ ही साथ इस बात का भी जिक्र करें कि किस खेत के लिए कितनी रकम निश्चित की गयी है। गवर्नर जनरल का आदेश इस प्रकार है : प्रत्येक गाँव में राजस्व की दर, भुगतान के तरीके, प्रत्येक खेत की रकम का विस्तार से उल्लेख होना चाहिए, इसके अभाव में बंदोबस्त अपूर्ण माना जाएगा।

व्यावहारिक तौर पर इसे लागू करना असंभव सिद्ध हुआ। आकलन अपर्याप्त सिद्ध हुए और राजस्व बसूल करने वाले पदाधिकारियों ने सरकार के खजाने को भरने के लिए मनमाने ढंग अख्तियार किए। महलवाड़ी व्यवस्था ग्रामीण समुदाय का भला तो नहीं कर सकी, उसने असंभव कर निर्धारण द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को खोखला बना दिया। 1833 में यह निर्णय लिया गया कि सभी अधिकारों और भुगतान को विस्तारपूर्वक दर्ज करने की नीति छोड़ी जाए और गाँवों द्वारा दी जाने वाली रकम का मोटा खाका बनाया जाए। बाद के वर्षों में काश्तकारों द्वारा जमीन के मालिकों को दी जाने वाली रकम के आधार पर राजस्व की राशि तय की गयी। इस रकम के आधार पर बंदोबस्त पदाधिकारी को पूरे गाँव या महल की जमीन का राजस्व निर्धारित करना था, इस राशि को "कर संपदा" (Rental Assets) कहा गया। इसका कुछ हिस्सा अर्थात् 50% सरकार को अदा करना था। ये सारे आकलन अनुमान पर आधारित थे और इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस अनुमान के आधार पर दरें ऊँची रखी गयी ताकि सरकार को अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त हो सके।

15.6.2 महलवाड़ी बंदोबस्त के प्रभाव

इस व्यवस्था का आरंभिक प्रभाव यह हुआ कि बड़े ताल्लुकदारों की संख्या में कमी आई। ब्रिटिश पदाधिकारियों ने जहाँ तक संभव हुआ, ग्रामीण जमींदारों से सीधा बंदोबस्त किया और अगर किसी ताल्लुकदार ने न्यायालय की शरण ली तो इन पदाधिकारियों ने वहाँ भी ग्रामीण जमींदारों का समर्थन किया। पर तथाकथित ग्रामीण जमींदारों का समर्थन इसलिए किया गया ताकि उनसे अधिक से अधिक राजस्व बसूला जा सके। वे ताल्लुकदारों से तो मुक्त हो गये पर सरकार के भारी कर के जाल में बुरी तरह फँस गये।

इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण जमींदार उजड़ गये। एक पदाधिकारी ने अलीगढ़ की स्थिति का विवरण देते हुए लिखा है :

"जमा भू-राजस्व की दर काफी ऊँची है, ऐसे में मालगुजार राजस्वदाता अपनी स्थिति सुधारने की आशा छोड़ चुके हैं और भार को सहने में सक्षम नहीं है वे बुरी तरह ऋण के बोझ तले दबे हुए हैं, और बकाया राशि अदा करने की हालत में नहीं हैं।" इसके परिणामस्वरूप खेत महाजनों और व्यापारियों के हाथ में जाने लगे, जिन्होंने खेत के पुराने मालिकों को किसान से मजदूर बना दिया। ऐसा ज्यादातर वाणिज्य प्रधान जिलों में हुआ, जहाँ राजस्व का निर्धारण काफी ऊँची दर पर किया गया था और जहाँ के भूमिपतियों को 1833 की मंदी के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा था। उनका व्यापार ढह गया था और निर्यात बिल्कुल मंदा हो गया था। 1840 के दशक में कई बार ऐसी स्थिति आती थी कि बकाया राशि वसूलने के लिए जमीन बेची जा रही होती थी और कोई खरीददार नहीं मिलता था। मद्रास प्रेसिडेंसी के समान इन इलाकों का कर भी इतना ऊँचा था कि कोई खरीददार मुनाफे की आशा नहीं कर सकता था। अत: महलवाड़ी व्यवस्था के कारण 1830 और 1840 के दशकों में उत्तर भारत में गरीबी और तबाही आयी और इसका प्रस्फुटन 1857 के लोकप्रिय विद्रोह के रूप में हुआ। इस वर्ष के दौरान पूरे उत्तर भारत में ग्रामीणों और ताल्लुकदारों ने सरकारी पदाधिकारियों को मार भगाया, न्यायालय सरकारी आँकड़े और कागजात नष्ट कर दिए तथा नए खरीददारों को गाँव से बाहर निकाल दिया।

बोध प्रश्न 2

1) रैयतवाड़ी व्यवस्था और स्थाई बंदोबस्त में क्या अंतर है? किन्हीं तीन का उल्लेख करें।

....

....

....

....

....

....

....

2) रैयतवाड़ी व्यवस्था महलवाड़ी व्यवस्था से किन बातों में अलग है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

3) ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर महलवाड़ी बंदोबस्त का क्या प्रभाव पड़ा? साठ शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

15.7 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने ब्रिटिश काल के दौरान उभरने वाली तीन प्रमुख भू-व्यवस्थाओं की जानकारी प्राप्त की। नये विजित इलाकों में अंग्रेजों ने महलवाड़ी या रैयतवाड़ी व्यवस्था कायम की। पंजाब में महलवाड़ी व्यवस्था लागू की गयी और केंद्रीय भारत में कुछ बदले हुए रूप में मालगुजारी व्यवस्था। 1857 के विद्रोह के बाद अवध के ताल्लुकदारों को जमीन का मालिक बना दिया गया ताकि भविष्य में होने वाले विद्रोहों में वे अंग्रेजों का साथ दे सकें। यहाँ भी महलवाड़ी बंदोबस्त कायम किया गया।

हमारे विचार-विमर्श से एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई कि अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक राजस्व वसूलना था। कभी-कभी इससे भूमि का बाजार निर्मित होता था, और भूमि की खरीद फरोख्त होती थी। पर साथ ही साथ राज्य द्वारा स्थापित ऊँची दर के कारण खरीददार भी मुश्किल से मिल पाते थे। भारत सरकार का खर्च बढ़ गया था और उसे लंदन भी राशि भेजनी होती थी, अत: ज्यादा से ज्यादा राजस्व वसूलने का प्रयत्न किया गया।

इसके बाद कुछ अन्य मुद्दों पर इकाई 16 में बातचीत की जाएगी। यह इकाई कृषि के वाणिज्यीकरण पर केंद्रित है।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 15.1

2) इस उत्तर में आप स्थाई बंदोवस्त लागू करने के पीछे अंग्रेजों के आर्थिक हितों का उल्लेख करें। उत्तर के दूसरे भाग में जमींदारों पर किसानों की बढ़ती निर्भरता और किसानों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालें। देखें भाग 15.2

3) देखें भाग 15.2

बोध प्रश्न 2

1) एक में जमींदार के साथ, दूसरे में रैयतों के साथ बंदोवस्त किया गया। देखें भाग 15.3 और 15.5

2) देखें भाग 15.5 और 15.6

3) ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महाजनों और व्यापारियों का बढ़ता प्रभाव और किसानों की तबाही आदि। देखें, उपभाग 15.6.2